घड़ी, तुम किताब हो न?

राजेश जोशी

"टीपू चलो, जल्दी-से अपने जूते पहन लो!"

माँ की आवाज़ सुनकर टीपू को बड़ा अचम्भा हुआ। टीपू एक ऐसा लड़का था जो हर चीज़ को कुछ और समझता था। टीपू मन ही मन बुड़बुड़ाया 'जूते पहन लूँ...? लेकिन जूते कहाँ पहनूँ? क्या उड़ने वाले घोड़ों को जूते में बन्द किया जा सकता है?' टीपू ने अपने नर्म-नर्म, छोटे-छोटे पाँवों को देखा और छूकर कहा, "क्या तुम उड़ने वाले घोड़े नहीं हो? ऐसा कैसे हो सकता है, मैं तो कई बार तुम पर बैठकर उड़ा हूँ, यहाँ-वहाँ की सैर की है... और उस दिन गिलहरी-परी ने भी तो कहा था कि तुम उड़ने वाले घोड़े हो। क्या तुम उड़ना भूल गए हो?"

माँ की आवाज़ एक बार फिर आई, "टीपू, तुमने जूते पहने या नहीं?"

जूते टीपू के पास ही पड़े थे। टीपू ने एक जूते को पास सरकाया और उसके अन्दर झाँका। "अहा! यह तो छोटा-सा अस्तबल है। इसमें क्या उड़ने वाले घोड़ों को बाँधा जा सकता है?" टीपू को अचानक ही वो लाल-लाल जूते अच्छे लगने लगे। उसने सोचा कि घोड़ों को कभी-कभी सोना भी तो चाहिए। कितना अच्छा है, यह घोड़ों को बाँधने का अस्तबल!

लेकिन टीपू की दिक्कत यह थी कि इस समय बाहर बहुत चमकीली धूप खिली हुई थी और हरी-हरी घास चमक रही थी। फूलों पर तितलियाँ उड़ रही थीं और नीम के पेड़ से उसकी गिलहरी-परी बाहर आ रही थी। इस समय तो उसे उड़कर वहाँ पहुँचना था। इस समय घोड़ों को बाँध दिया तो काम कैसे चलेगा। उसने जूतों को पलंग के नीचे छिपा दिया

और बाहर निकलने को हुआ। बाहर निकलते हुए उसने पलटकर देखा तो जूते पलंग के नीचे से दिखाई दे रहे थे। टीपू वापस पलटा, सोचने लगा, कौन-सी जगह हो सकती है जहाँ जूते छिपाये जा सकें।

कोई जगह नहीं थी जो माँ की नज़र से बच जाती। टीपू को देर हो रही थी। तभी उसे दवात और कलम दिखाई दी। उसने जादू की डिबिया की तरह दवात को खोला और जादू की छड़ी की तरह कलम को घुमाया... 'गिली गिली फू... गिली फू...' मंत्र पढ़कर उसने कहा, "ऐ मेरी जादू की छड़ी, इन जूतों को छुपा दे।" तब उस जादू की छड़ी से उसने एक अक्षर बनाया 'जू' और एक जूते को उसमें रख दिया। फिर उसने दूसरा अक्षर बनाया 'ता' और दूसरे जूते को उसमें रख दिया। अब इन जूतों को टीपू के अलावा कोई नहीं देख सकता था। दोनों छोटे-छोटे जूते उन दो छोटे-छोटे अक्षरों में पूरी तरह समाकर छिप गए थे।

माँ की आवाज़ के जवाब में टीपू ने एक लम्बा हुँकारा भरा और बाहर की ओर भाग गया। बाहर आते ही टीपू को लगा कि आवाज़, आवाज़ नहीं पतंग की डोर है। उसे लगा, आवाज़ भी एक छोर से दूसरे छोर तक जा सकती है तो इससे पतंग भी उड़ाई जा सकती है। पर पतंग नहीं थी। उसने आसपास नज़र दौड़ाई तो उसे एक रंग-बिरंगी तितली दिखी। "अहा! इससे बढ़िया पतंग कौन-सी हो सकती है!" टीपू ने तत्काल उस तितली-पतंग में अपनी आवाज़ की डोर बाँधी और महीन सीटी की आवाज़ के साथ उसे आकाश की ओर फेंका। तितली-पतंग उड़ने लगी। टीपू मुँह ही मुँह में बुड़बुड़ाया, "मैंने ठीक सोचा था। आवाज़ भी एक डोर होती है और उससे पतंग उड़ाई जा सकती है। देखो, मेरी आवाज़ से बँधी यह तितली-पतंग कितने मज़े में उड़ रही है!"

उड़ते-उड़ते तितली कहीं चली गई। टीपू ने कहा, "पता नहीं, मेरी पतंग किसने काट दी।" उसने ज़ुबान को मुँह में गोल-गोल घुमाकर अपनी आवाज़ की डोर को वापस लपेटा और नीम के पेड़ की तरफ चल दिया।

गिलहरी, जिसे टीपू गिलहरी-परी कहता था, एक डाल पर दौड़ रही थी। टीपू बहुत देर तक उस पेड़ को चारों ओर घूम-घूम कर देखता रहा। फिर थककर बैठ गया। उसे समझ नहीं आ रहा था कि इस महल का दरवाज़ा कहाँ है जहाँ से ये गिलहरी और चिड़ियाँ बाहर आ रही हैं। उसे लगा, हो न हो, चिड़ियाँ भी परियाँ ही हैं, और ज़रूर उनके पास कोई जादू

है जिससे वे इस महल के अन्दर आती-जाती हैं।

इसी समय एक आदमी उस पेड़ के पास से गुज़रा। टीपू दौड़ते हुए उसके पास गया और नीम के पेड़ की तरफ उँगली उठाकर बोला, "क्या आप जानते हैं, इस महल का दरवाज़ा कहाँ है?" आदमी ने मुस्कराकर टीपू को देखा और कहा, "एक, ज़मीन के नीचे और दूसरा, ऊपर फुनगी के पास।" आदमी हँसता हुआ चला गया। टीपू खूब खुश हो गया।

लेकिन अब समस्या थी कि उस दरवाज़े तक जाया कैसे जाए! इतना ऊपर चढ़ने की वो हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था। टीपू पेड़ के तने से टिककर सोच रहा था, तभी एक निबोरी उसके सिर पर टपकी। टीपू चौंका। उसने निबोरी को उठा लिया और बोला, "तो यह है, इस महल के राजा की मोहर! पता नहीं, राजा ने क्या सन्देशा इस मोहर से भिजवाया है।" कुछ देर वह उस सुनहरी निबोरी को उलट-पलट कर देखता रहा लेकिन कोई बात समझ नहीं आ रही थी। तभी उसने निबोरी को दबाया तो अन्दर से एक गुठली बाहर उचक आई। "तो असल मोहर यह है, इस पर कितना अच्छा खोल चढ़ाकर भेजा है राजा ने!" टीपू उस गुठली को मुट्ठी में बन्द करके फिर सोच में डूब गया।

* * *

थोड़ी देर में ही टीपू महल के अन्दर था। महल के भीतर हज़ारों कोठरियाँ थीं, हज़ारों गलियारे थे। टीपू लगातार चल रहा था पर कोठरियाँ खत्म होने का नाम ही नहीं ले रही थीं। टीपू बुरी तरह थक गया था इसलिए

सामने रखी कुर्सी पर जाकर धम-से बैठ गया।

"क्यों, थक गए?" कुर्सी ने पूछा।

"हाँ!" टीपू ने कहा।

"चलो, कुछ देर मेरी गोद में बैठकर सुस्ता लो...फिर आगे जाना।" कुर्सी ने कहा।

"तुम लेकिन हो कौन?" टीपू ने पूछा।

कुर्सी ने कहा, "हमारे यहाँ नाम रखने का चलन नहीं है। ये हर चीज़ का नाम रखना तुम लोगों का काम है। तुम्हीं बताओ कि तुम हमें क्या कहते हो!"

"मुझे अभी सारी चीज़ों के नाम पता नहीं, मेरा जो मन आता है, मैं वही नाम रख लेता हूँ। दोस्त कहते हैं, मैं हर चीज़ का नाम गड़बड़ कर देता हूँ!"

"फिर भी तुम्हें क्या लगता है, मैं क्या हूँ?" कुर्सी ने टीपू को कौंचा।

"मुझे तो तुम एक बत्तख जैसी लगती हो, क्या तुम एक बत्तख नहीं हो?"

कुर्सी ने मुस्कराकर हामी भरी। उसे बत्तख कहलाना अच्छा लगा। लेकिन टीपू सोच रहा था कि अगर यह बत्तख है तो यह उसकी तरह बोलती क्यों नहीं!

टीपू सोचते हुए आगे बढ़ गया। सामने एक सुराही और गिलास रखा था। टीपू को प्यास लग रही थी। वो जैसे ही सुराही की ओर बढ़ा, सुराही ने पूछा, "तो प्यास लगी है?"

"हाँ!" टीपू ने हामी भरी।

"ठीक है, मैं पानी तो तुम्हें पिला दूँगी, पर कहीं तुम यह तो नहीं समझ रहे हो कि मैं एक सुराही हूँ?" टीपू चकराया। कुछ देर तक उसके मुँह से बोल नहीं फूटे।

फिर धीरे-से कुछ सहमते हुए

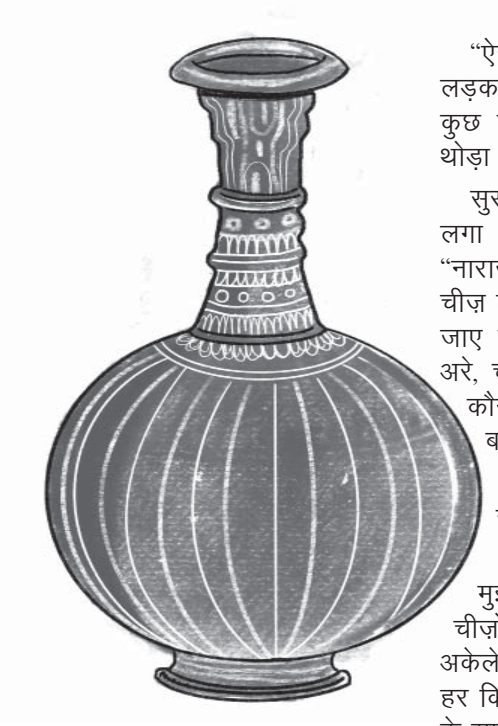

उसने कहा, "तो तुम क्या हो?" तभी पास रखा गिलास बोला, "तब तो तुम कहोगे कि मैं एक गिलास हूँ।" टीपू ने गुस्से में कहा, "नहीं, तुम गिलास नहीं हो, एक कुआँ हो।" सुराही मुस्कराई, बोली, "तुम्हें किसने बताया कि मैं सुराही हूँ और यह गिलास है?"

"अरे, किसने क्या होता है... मेरी किताब में लिखा है... मेरी माँ ने बताया।"

"तुम चूहे हो! मेरी माँ ने तुम्हारे बारे में ऐसा ही बताया है!" सुराही ने कहा।

"ऐसा नहीं हो सकता। मैं एक लड़का हूँ। तुम्हारी माँ को, लगता है, कुछ पता नहीं," टीपू ने कहा। वह थोड़ा चिढ़ गया था।

सुराही को टीपू पर तरस आने लगा था। पुचकारते हुए बोली, "नाराज़ मत होओ! लेकिन किसी चीज़ का कोई भी नाम तुमको बताया जाए तो उसे मान मत लिया करो। अरे, चीज़ों से भी तो पूछो कि उन्हें कौन-सा नाम पसन्द है! समझे मेरी बात?"

"लेकिन चीज़ें भला बोल सकती हैं क्या?" टीपू ने पूछा।

"इतनी देर से क्या तुम मुझसे बात नहीं कर रहे हो? चीज़ों से बात करने के लिए, उनसे अकेले में बात करनी पड़ती है। चीज़ें हर किसी से बातें नहीं करतीं। दूसरों के सामने तो एकदम नहीं।" सुराही ने समझाया।

"लेकिन दूसरों के सामने बात करने से क्या होता है?"

"लोग चीज़ों को सिर्फ चीज़ें भर समझते हैं।"

"चीज़ें अगर चीज़ें नहीं होतीं तो क्या होती हैं?"

'हर चीज़ के भीतर एक चीज़ और होती है, और शायद उसके भी भीतर एक और... इसे सिर्फ सपने देखने वाले ही जान सकते हैं।" सुराही ने हल्के ठण्डे हाथ से टीपू की पलकों को छुआ।

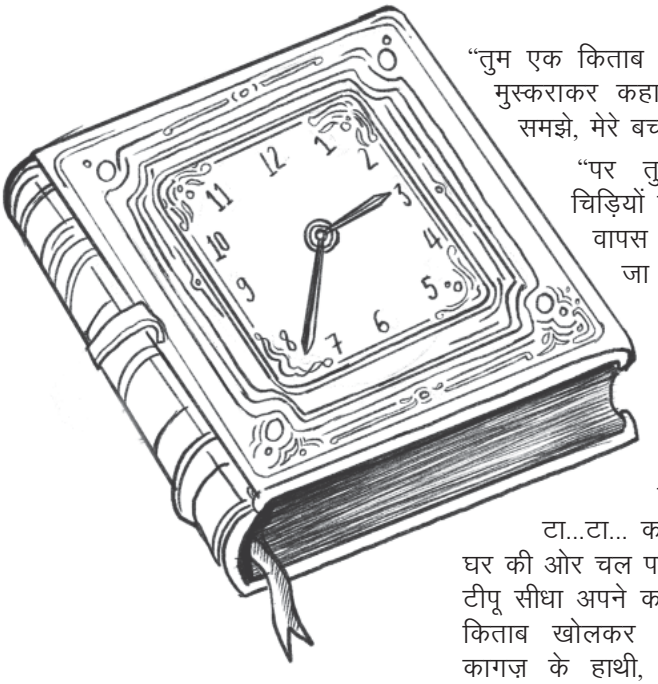

टीपू थोड़ा आगे बढ़ा तो एक घड़ी उसे घूर रही थी। टीपू ने पास जाकर उसके कान में फुसफुसाकर कहा, "तुम एक किताब हो न?" घड़ी ने मुस्कराकर कहा, "एकदम ठीक समझे, मेरे बच्चे।"

"पर तुम्हारे काँटे तो चिड़ियों की तरह उड़कर वापस घोंसले की तरफ जा रहे हैं।"

"हाँ, इसका मतलब है, अब तुम्हें भी अपने घर जाना चाहिए।"

घड़ी ने शायद टा...टा... कहा। टीपू तेज़ी-से घर की ओर चल पड़ा। घर पहुँचकर टीपू सीधा अपने कमरे में गया और किताब खोलकर बोला, "ओ मेरे कागज़ के हाथी, मुझे जंगल की तरफ ले चल।"

कागज़ के हाथी पर बैठ टीपू जंगल की ओर चला पड़ा।

राजेश जोशी: हिन्दी के लेखक, कवि और नाटककार हैं। अपने कविता संग्रह *दो पंक्तियों के बीच* के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित। इसके अलावा मुक्तिबोध पुरस्कार, माखन लाल चतुर्वेदी पुरस्कार, श्रीकान्त वर्मा स्मृति सम्मान से नवाज़े जा चुके हैं। इनकी कविताएँ अँग्रेज़ी, रशियन, जर्मन, उर्दू और कई भारतीय भाषाओं में अनुवादित हो चुकी हैं। भोपाल में रहते हैं।

सभी चित्र: प्रभाकर डबराल: पेशे से चित्रकार, प्रकृति प्रेमी, कहानीकार और डिज़ाइन शिक्षक हैं। लोगों की उत्पत्ति की कहानियाँ सुनना बहुत पसन्द करते हैं। स्वतंत्र चित्रकारी करते हैं। समानुभूति, करुणा और आत्म-साक्षात्कार फैलाने में सहायक बनकर अपने जीवन को जीने लायक बनाना चाहते हैं।

यह कहानी राजेश जोशी के कहानी संग्रह *कपिल का पेड़* से साभार। साथ ही, यह कहानी बच्चों की पत्रिका *समझ झरोखा* में प्रकाशित हुई थी।